साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

वर्ष : 6, अंक : 2 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 2 सितम्बर से 8 सितम्बर 2020 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

पानी ही नहीं, जीवन की सीख भी देती थी बावड़ियां

बावड़ियां वास्तुकला और जल संचय व्यवस्था का एक अद्भुत रूप है, जो 7वीं शताब्दी के बाद से समूचे राजस्थान और गुजरात में आज तक बची हुई हैं। गुजरात में इनकी महत्ता और कौशल ने जो स्थान प्राप्त किया है उसे अब पार करना मुश्किल है। हालांकि पश्चिमी भारत की कला और वास्तुकला के इतिहास की कई किताबों में इन बावड़ियों की उपेक्षा की गई है, परंतु इस क्षेत्र की वास्तुकला और शिल्पकला के विकास में आए बदलाव को ये भलीभांति दर्शाती हैं।

ये बावड़ियां पानी तो देती ही थीं, पानी लेने आई औरतों और मर्दों के मिलने और आराम करने की जगह भी थीं। ऐसा माना जाता है कि यहां जीवन देने वाली कई प्रेतात्माएं भी रहती हैं। बावड़ियां अक्सर तीन जगहों पर देखी जा सकती हैं-ये मंदिरों के पास होती हैं या इनमें खुद ही एक मंदिर या समाधि हो सकती है। ये गांव के बीच में हो सकती हैं या गांव के बाहर स्थित सड़क के साथ भी हो सकती हैं।

भारत में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के कुओं में से ये बावड़ियां अर्थात सीढ़ीदार कुएं, वास्तुकला की दृष्टि से सबसे जटिल और पेचीदा मानी जाती हैं। इनकी एक विशेषता एक लंबा सीढ़ीदार गलियारा है, जो पांच या छह मंजिलों से होते हुए नीचे स्थित कुएं तक पहुंचता है।

चूंकि इसका अधिकतर हिस्सा भूमिगत होता है, इसलिए यह एक भूमिगत मंदिर के समान दिखता है। मीनारों की तरह के

कई अनुप्रस्थ 卐कुत卐 जिनका निर्माण कभी-कभी खुले स्तंभों वाले मंडपों की तरह किया जाता है, किनारों की दीवारों को सहारा प्रदान करते हैं। सीढ़ीदार गलियारों को ये कुत एक नियमित अंतराल के बाद काटते हैं। ये गलियारे नीचे स्थित पानी के स्त्रोत तक पहुंचते हैं। बड़ी बावड़ियों में सात तक भूमिगत मंजिलें हुआ करती हैं। इनके निर्माण की विधि मिट्टी की दशा और भूजल की गहराई पर निर्भर करती है। गुजरात की बावड़ियों को इनके निर्माण संबंधी विशेषताओं के आधार पर पांच मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है- एक, जिनमें सीढ़ीदार गलियारे एक सीधी लाइन में नीचे की तरफ बने होते हैं और सिर्फ एक प्रवेशद्वार होता है।

दूसरा, जो पहले से ही समान होते हैं पर इनमें तीन प्रवेशद्वार होते हैं। तीसरा, जिनमें सीढ़ीदार गलियारे आगे जाकर समकोण पर मुड़ गए होते हैं। चौथा, जिनके कुओं के चारों तरफ परिक्रमा करता बरामदा सा होता है और पांचवां, जिसमें बावड़ी में चारों दिशाओं से चार प्रवेश द्वार होते हैं और पानी बिल्कुल मध्य में रहता है। अक्सर सबसे निचले स्तर में एक चौकोर जलाशय बना होता है। बावड़ी का यह हिस्सा, सीढ़ीदार गलियारे की तरह, बिल्कुल खुला होता है। इस पानी के चारों तरफ एक बरामदेनुमा रास्ता होता है, जिसे खंभों की सहायता से खड़ा रखा जाता है और जिसे शिल्पकला और नक्काशी से सजाया जाता है। ऊपरी मंजिलों में, एक निचली मुंडेर की दीवार, जिसमें झुके हुए पत्थर लगाए जाते हैं, से खुली जगहों को ढका जाता है। इसे कक्सासणा कहा जाता है। साधारणत: इसे आकर्षक नक्काशी और कभी-कभी चिड़ियों, घोड़ों, हाथियों, लड़कियों, जोड़ों या अन्य दैविक चित्रों से सजाया जाता है। पास के क्षेत्रों में पानी पहुंचाने के लिए तैयार की गई पानी की नालियां या जानवरों के पीने नहाने के पानी के कुंड बावड़ी की दीवारों से जुड़े होते हैं।

ये घरेलू उपयोग और खेती की जरूरतों को पूरा करने के सबसे प्रमुख स्त्रोत हैं। उत्तरी गुजरात की शुष्क जलवायु में, जहां नदियों और पानी के अन्य प्राकृतिक स्त्रोतों में पानी वर्षा के मौसम के कुछ ही महीनों बाद तक उपलब्ध रहता है, ये बावड़ियां साल भर अपने जलभरों से साफ पानी उपलब्ध कराने की स्त्रोत हैं। बावड़ियां कभी सामाजिक मेलजोल और एक-दूसरे को सूचना देने की एक आदर्श जगह हुआ करती थीं। दिन की गर्मी से बचने के लिए लोग इसकी ठंडी छांव में आराम किया करते थे। गांव से बाहर बनी बावड़ियां सभी प्रमुख व्यापार मार्गों पर तैयार की जाती थीं। गुजरात के समुद्री तटों पर स्थित महत्वपूर्ण बंदरगाहों से सामान को उत्तरी भारत में ले जाने वाले कारवां यहां आराम करते थे।

धार्मिक महत्व

मध्यकाल की कई पुस्तकों और अभिलेखों में इस बात का उल्लेख है कि जो भी व्यक्ति तालाबों, कुओं या बावड़ियों का निर्माण करता है, उसे बलि देने वालों की अपेक्षा अधिक पुण्य मिलता है। जहां भगवान को प्रसाद चढ़ाने से सिर्फ पुजारियों को ही फायदा पहुंचता है, इन कुओं के निर्माण से सभी प्यासे प्राणियों की प्यास बुझती है।

गुजरात जैसे शुष्क राज्य में, सिर्फ बावड़ियों और तालाबों की खुदाई ही हमेशा के लिए पानी उपलब्ध कराने की गारंटी नहीं बन सकती हैं इसलिए पानी या उसमें बसने वाले भगवान की कृपा पाने के लिए पूजा-पाठ और भोग चढ़ाने की भी जरूरत पड़ती है। गुजरात में पानी और उसके स्त्रोतों की पूजा करने की प्रथा प्राचीनकाल से चली आ रही है। संभवत: मातृ देवी की उपासना-पद्धति या यह एक और रूप है।

वैज्ञानिकों ने खोजी नई तकनीक, मानव अंगों में मौजूद माइक्रोप्लास्टिक का लगा सकेंगे पता

वैज्ञानिकों ने एक नई तकनीक विकसित करने का दावा किया है जिसकी मदद से शरीर के अंगों और ऊतकों में मौजूद माइक्रोप्लास्टिक्स की पहचान की जा सकती है। गौरतलब है कि माइक्रोप्लास्टिक और नैनोप्लास्टिक के यह कण इतने छोटे होते हैं जिन्हें आंखों से नहीं देखा जा सकता।

दुनिया भर में शायद ही ऐसी कोई जगह होगी, जहां प्लास्टिक मौजूद न हो। आज जहां इंसान नहीं पहुंचा है, वहां पर भी यह माइक्रोप्लास्टिक पहुंच चुके हैं। आर्कटिक के बर्फीले पहाड़ों से लेकर गहरे समुद्रों तक सब जगह इसकी मौजूदगी के चिन्ह मिले हैं। यह भोजन, पानी और सांस के माध्यम से हमारे शरीर में भी पहुंच रहे हैं।

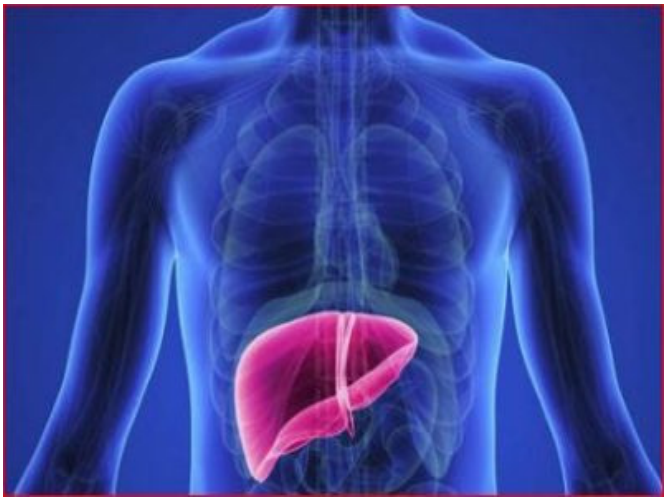

इस शोध से जुड़े शोधकर्ता चार्ल्स रोलस्की ने बताया कि कुछ ही वर्षों में प्लास्टिक हमारे लिए वरदान से अभिशाप में बदल चुकी है। इस बात के पुख्ता प्रमाण हैं कि यह हमारे शरीर में भी अपना रास्ता बना चुकी है, इसके बावजूद इस पर बहुत ही कम शोध किये गए हैं। यह हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है या नहीं इस बारे में हमें आज भी ठीक-ठीक नहीं पता। हालांकि जानवरों पर किये गए शोधों से पता चला है कि यह उनमें बांझपन, सूजन और कैंसर के खतरे को बढ़ा सकती है। यह शोध 1। अगस्त को अमेरिकन केमिकल सोसाइटी (एसीएस) के फॉल 2020 वर्चुअल मीटिंग एंड एक्सपो में प्रस्तुत किया है।

अध्ययन में क्या कुछ आया सामने

यह पता लगाने के लिए कि यह माइक्रोप्लास्टिक शरीर के किन अंगो में पहुंच सकता है, शोधकर्ताओं ने फेफड़े, यकृत, प्लीहा और किडनी के 4। नमूने इकट्ठे किये थे। जिनमें प्लास्टिक के पाए जाने की सम्भावना सबसे अधिक थी, क्योंकि यह अंग शरीर के लिए फ़िल्टर का काम करते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार उन्होंने जिन 4। नमूनों का अध्ययन किया था, उन सभी में प्लास्टिक के कण मिले हैं।

जिन टिश्यू बैंक से यह नमूने लिए गए हैं वहां टिश्यू डोनर्स के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध है जैसे कि उनकी जीवन शैली, भोजन, वो क्या काम करते थे ऐसे में हेल्डन का मानना है कि इसकी मदद से भविष्य में हम यह जान सकते हैं कि किन तरीकों से माइक्रोप्लास्टिक इंसानी शरीर में पहुंचता है।

शोधकर्ताओं ने नमूनों से प्लास्टिक को निकालने और उसकी जांच के लिए एक अलग प्रक्रिया विकसित की है। जिसमें विश्लेषण के लिए द्व-रमन स्पेक्ट्रोमेट्री की मदद ली गई है। साथ ही उन्होंने एक कंप्यूटर प्रोग्राम भी बनाया है, जिसकी मदद से प्लास्टिक कणों के बारे में मिली सूचना का विश्लेषण किया जा सकता है। उनकी योजना इस टूल को सार्वजनिक करने की है जिससे अन्य वैज्ञानिक भी इसकी मदद से माइक्रोप्लास्टिक जांच कर सकें। जिससे एक यूनिवर्सल डेटाबेस तैयार हो सके। इस शोध से जुड़े शोधकर्ता रॉल्फ हेल्डन के अनुसार इस डेटाबेस की मदद से अलग-अलग स्थानों पर मनुष्य के अंगों में मिले माइक्रोप्लास्टिक की तुलना की जा सकेगी।

वैज्ञानिकों के अनुसार इस तकनीक की मदद से शरीर में मौजूद दर्जनों प्रकार के प्लास्टिक की पहचान की जा सकती है। जिसमें बोतलों के लिए प्रयोग होने वाली पॉलीथीन टेरिफ्थेलैट (पीईटी) से लेकर प्लास्टिक की थैलियों में प्रयुक्त होने वाली पॉलीएथिलीन शामिल है।

क्या होती है माइक्रो और नैनोप्लास्टिक

जब प्लास्टिक के बड़े टुकड़े टूटकर छोटे कणों में बदल जाते हैं, तो उसे माइक्रोप्लास्टिक कहते हैं। इसके साथ ही कपड़ों और अन्य वस्तुओं के माइक्रोफाइबर के टूटने पर भी माइक्रोप्लास्टिक्स बनते हैं। प्लास्टिक के 1 माइक्रोमीटर से 5 मिलीमीटर के टुकड़े को माइक्रोप्लास्टिक कहा जाता है। जबकि नैनोप्लास्टिक, माइक्रोप्लास्टिक से भी छोटे होते हैं जिनका व्यास 0.001 मिमी से भी कम होता है।

मैंग्रोव वनों के संरक्षण के प्रयासों से दिखी कार्बन संग्रहण में बढ़ोत्तरी

हाल के वर्षों में मैंग्रोव वनों की कटाई के कारण वायुमंडल में कार्बन उत्सर्जन में वृद्धि हुई है। सिंगापुर-ईटीएच सेंटर के नेतृत्व में किए गए शोध से पता चलता है कि 1996 से 2016 के बीच दुनिया भर में वनों की कटाई से जारी कार्बन की शुद्ध मात्रा केवल 1.8 फीसदी है, जो कि वैश्विक कार्बन डाइऑक्साइड (सीओ 2) उत्सर्जन का 0.1 फीसदी से कम है। मैंग्रोव वनों द्वारा किया जाने वाला कार्बन संग्रहण (स्टॉक्स) कम हुआ है। इसकी मात्रा को बढ़ाने के नए तरीके में मैंग्रोव वनों का विस्तार करना, संरक्षण और इनका ध्यान रखना महत्वपूर्ण है। अध्ययन में बताया गया है कि मैंग्रोव कार्बन संग्रहण (स्टॉक्स) के शुद्ध घाटे को कम करने के लिए, लोगों के द्वारा वृक्षारोपण के माध्यम से मैंग्रोव का विस्तार किया जाना चाहिए। पिछले अनुमानों ने केवल मैंग्रोव वनों की कटाई के बुरे प्रभावों के बारे में बताया था, लेकिन इस बात की संभावना पर प्रकाश नहीं डाला कि नए मैंग्रोव भी उगेंगे। नई विधि में मैंग्रोव पर दुनिया भर के आंकड़े बताते है कि इनका बेहतर विस्तार हुआ है, अर्थात मैंग्रोव के जंगल बढ़े हैं। इस नए शोध में मैंग्रोव के

विस्तार के साथ-साथ कार्बन घनत्व और इसकी मात्रा निर्धारित की है। इसमें बताया गया है कि आम तौर पर जब मैंग्रोव वनों की कमी होती है तो कितनी मात्रा में कार्बन संग्रहण का नुकसान होता है। नई पद्धति का उपयोग करते हुए, पिछले मॉडल से तुलना करने पर पता चलता है लगभग 66 फीसदी कार्बन का नुकसान हुआ है। यह अध्ययन नेचर कम्युनिकेशन्स पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। शोध की अगुवाई करने वाले, सिंगापुर-ईटीएच सेंटर के डॉ. डैन रिचर्ड्स के अनुसार, मैंग्रोव कार्बन स्टॉक का शुद्ध नुकसान कम होना आश्चर्यजनक था। मैंग्रोव वनों की कटाई को अक्सर संकट के रूप में देखा जाता है, लेकिन हाल के कामों के बीच हमारे अध्ययन से पता चलता है कि वास्तव में दुनिया भर में वनों की कटाई को धीमा करने में काफी सफलता मिली है। मेक्सिको और म्यांमार के कुछ हिस्सों में 1996 की तुलना में 2016 में मैंग्रोव में अधिक कार्बन संग्रहीत था। मोनाश विश्वविद्यालय के डॉ. बेंजामिन थॉम्पसन ने कहा मैंग्रोव वनों को काटे जाने से बचाने में संरक्षण प्रयासों की स्पष्ट सफलता के बराबर अन्य कोई संतोष नहीं हो सकता है। मैंग्रोव किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में कार्बन के उच्चतम घनत्व को संग्रहीत करते हैं।

कोयले का काला कारोबार

जून में जब नए कोयला ब्लॉकों की नीलामी शुरू हुई, तब प्रधानमंत्री ने कहा कि इससे कोयला क्षेत्र को कई वर्षों के लॉकडाउन से बाहर आने में मदद मिलेगी। लेकिन समस्या यह है कि कोयले के भंडार घने जंगलों में दबे पड़े हैं और इन जंगलों में शताब्दियों से सबसे गरीब आदिवासी बसते हैं। कोयले के लिए नए क्षेत्रों का जब खनन शुरू होगा, तब आदिवासियों और आबाद जंगलों पर अनिश्चितकालीन लॉकडाउन थोप दिया जाएगा।

18 जून को,वाणिज्यिक खनन के लिए 41 कोयला ब्लॉकों की नीलामी के एक कार्यक्रम में बोलते हुए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि भारत को ऊर्जा जरूरतों के लिए अपने घरेलू कोयले का उपयोग करने की आवश्यकता है। इस आयोजन ने इस क्षेत्र को निजी निवेशकों के लिए खोल दिया। 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) और कोयले के अंतिम उपयोग पर लगे सारे प्रतिबंध हटाकर। अब तक, खनिकों को बाजार में कोयले का व्यापार करने की अनुमति नहीं थी। कोयला का खनन या तो सार्वजनिक क्षेत्र के कोल इंडिया लिमिटेड या अन्य कंपनियों द्वारा खनन आवंटन या नीलामी के जरिए किया जाता था।

कोविड-19 के बाद सरकार के एजेंडे में ऊर्जा सुरक्षा सबसे ऊपर है। प्रधानमंत्री ने जोर देकर कहा कि यह नीलामी कोयला क्षेत्र को कई वर्षों के लॉकडाउन से बाहर लाएगी। उन्होंने कहा, भारत में दुनिया का चौथा सबसे बड़ा कोयला भंडार है और हम कोयले के दूसरे सबसे बड़े उत्पादक हैं तो फिर हम दुनिया के सबसे बड़े उत्पादक क्यों नहीं बन सकते?

कोयले को हरित बनाने के लिए सरकार ने 2030 तक 100 मिलियन टन कोयले को गैस में बदलने के लिए चार परियोजनाओं में 20,000 करोड़ का निवेश करने की घोषणा की है। समस्या यह है कि कोयले के भंडार देश के सबसे घने जंगलों में पाए जाते हैं, जहां बहुत गरीब लोग और इनमें भी ज्यादातर आदिवासी रहते हैं। इसका मतलब यह है कि जब अधिक कोयले के लिए नए क्षेत्रों का खनन शुरू होगा तो इन अनछुए जंगलों और उनके निवासियों पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ेगा। सवाल यह है कि भारत को कोयले के लिए अधिक खुदाई करने की आवश्यकता क्यों है? क्या देश की वर्तमान कोयला खदानें अपर्याप्त हैं? या हमें घरेलू कोयले को आयातित कोयले से बदलने की आवश्यकता है? वह आंतरिक तर्क क्या है जो इस नीति को संचालित करता है? इस परिवर्तन के पीछे की वजह छुपी हुई नहीं है। 2010 में, कोयला मंत्रालय (एमोसी) और पर्यावरण एवं वन मंत्रालय (एमओईएफ), (जिसे अब पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (एमओईएफसीसी) का नाम दिया गया है) ने एक वृहद अध्ययन के उपरांत भारत के कोयला भंडार को गो एवं नो-गो क्षेत्रों में वर्गीकृत किया था। अध्ययन ने कहा कि जंगलों को बचाने के लिए नो-गो क्षेत्रों में खनन को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए। ये जैव विविधता से भरपूर घने वन क्षेत्र थे और इसलिए, यहां खनन पर प्रतिबंध आवश्यक था। मंत्रालयों ने कुल अध्ययन किए गए क्षेत्रों में से 47 प्रतिशत (222) इलाकों को नो-गो क्षेत्रों के रूप में सीमांकित किया लेकिन 2010 से 2014 के बीच, संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) सरकार के कार्यकाल में यह संख्या 16 प्रतिशत या सिर्फ 35 ब्लॉकों तक सिमटकर रह गई। मौजूदा नेशनल डेमोक्रेटिक अलायंस (एनडीए) के सत्ता में आने के बाद भी यह काट पीट जारी रही। 2015 के बाद कई संरक्षित क्षेत्रों को खनन के लिए खोल दिया गया। इस साल जून में, 41 कोयला ब्लॉकों को नीलामी के लिए डाला गया था। ध्यान रहे कि इनमें से 12 की पहचान 2010 के अध्ययन में नो-गो क्षेत्र के रूप में की गई थी। लेकिन अगर ।गो। क्षेत्र देश की जरूरतों के लिए पर्याप्त हैं तो ।नो-गो। क्षेत्रों को बर्बाद क्यों करें ? वैसे भी पिछले एक दशक के दौरान सरकार ने निजी निवेशकों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) को 91 कोयला खानें नीलामी या आवंटन के माध्यम से दी हैं। उनमें से 30 ।गो। के रूप में सीमांकित क्षेत्रों में हैं। क्या ये सभी खदानें चालू हो गई हैं?

क्या नीलाम की गई खदानें चालू हैं?

इस साल जून में नीलामी के लिए घोषित 41 खदानों का एक बड़ा हिस्सा पहली बार तत्कालीन यूपीए सरकार द्वारा अलग-अलग पीएसयू और निजी निवेशकों को आवंटित किया गया था, जिसे बाद में सुप्रीम कोर्ट द्वारा रद्द कर दिया गया था। 25 अगस्त और 24 सितंबर 2014 को, सर्वोच्च न्यायालय ने 204 कैप्टिव कोयला खदानों को ।अवैध। घोषित कर दिया। एनडीए सरकार ने तब कोल माइंस (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 2015 को पेश किया और इन खानों की नीलामी और आवंटन का कार्य शुरू किया।

एमओसी ने बताया कि निजी निवेशकों को 33 और पीएसयू को 49 खदानें नीलामी द्वारा दी गईं थीं। हालांकि, मंत्रालय का कहना है कि वर्तमान में केवल 13 निजी और 14 सार्वजनिक क्षेत्र की खदानें चल रही हैं। इसका मतलब यह है कि 55, या लगभग 67 प्रतिशत नीलाम की गई खदानें विभिन्न कारणों से परिचालन में नहीं है, इसका कारण है कि कहीं अधिक लागत और प्रबंधन के मुद्दे तो कहीं वैधानिक वन मंजूरी की अनुपस्थिति।

2015 के बाद से, सरकार ने और नौ खानों की नीलामी की है और उनके संचालन की जानकारी सार्वजनिक डोमेन में नहीं है। एकमात्र जानकारी का स्रोत वन सलाहकार समिति (एफएसी) द्वारा 2015 में आयोजित एक बैठक है। एफएसी मुख्यत: एक ।बिना किसी चेहरे मोहरे वाली। संस्था है जो वन मंजूरी का आकलन और सिफारिश करती है।

इंसान कितना कर चुके हैं समुद्रों पर निर्माण, वैज्ञानिकों ने पहली बार किया आंकलन

विकास की चाह में इंसान ने समुद्र पर कितना निर्माण और विकास कार्य किया है, वैज्ञानिकों ने उसका आंकलन कर लिया है। यह पहली बार है जब समुद्रों पर बढ़ते इंसानी प्रभाव को आंका जा सका है। वैज्ञानिकों के अनुसार अब तक समुद्र के लगभग 32,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर इंसानों ने अपनी जरुरत के हिसाब से निर्माण कार्य किया है। यह समुद्र के करीब 0.008 फीसदी के बराबर है। अनुमान है कि यह 2028 तक बढ़कर 39,400 वर्ग किलोमीटर हो जाएगा।

यह तो वह प्रभाव है जो सीधे तौर पर इंसानों द्वारा किए निर्माण कार्यों के कारण पड़ रहा है। यदि इसमें अप्रत्यक्ष प्रभावों जैसे प्रदूषण और जल प्रवाह में किये बदलावों को भी इसमें सम्मिलिति कर लिया जाए तो यह असर 34 लाख वर्ग किलोमीटर का हो जाता है, जोकि समुद्र के कुल हिस्से के 0.5 फीसदी से भी ज्यादा है। सिडनी स्कूल ऑफ लाइफ एंड एनवायरनमेंटल साइंसेज और सिडनी इंस्टीट्यूट ऑफ मरीन साइंस द्वारा किया गया यह शोध जर्नल नेचर सस्टेनेबिलिटी में प्रकाशित हुआ है।

मनुष्य ने समुद्रों पर अपनी कितनी छाप छोड़ी है उसे इस तरह समझ सकते हैं यह वैसा ही है जैसे कि जमीन पर शहरों की बसावट है। जबकि प्राकृतिक आवासों से इसकी तुलना करें तो यह दुनिया भर में फैले मैन्ग्रोव के जंगल से भी कहीं ज्यादा है। समुद्रों के जिन क्षेत्रों में विकास और निर्माण का असर पड़ा है उसमें सुरंग और पुलों के कारण प्रभावित हुआ क्षेत्र शामिल है। इसके साथ ही ऊर्जा के लिए तैयार किये गए बुनियादी ढांचे जैसे तेल और गैस के कुंए, विंड फार्म, पोर्ट और बंदरगाह, एक्वाकल्चर के लिए तैयार किया इन्फ्रास्ट्रक्चर और कृत्रिम रीफ्स भी इसमें शामिल हैं।

कोई नया नहीं है समुद्रों पर निर्माण का इतिहास

इस शोध की प्रमुख शोधकर्ता ऐना बगनोट के अनुसार महासागरों पर इंसान द्वारा किया जा रहा यह विकास नया नहीं है। बस सिर्फ उसकी गति पहले से काफी बढ़ गई है। 2000 ईसा पूर्व भी समुद्रों पर निर्माण कार्य किया जाता था। उस समय समुद्री यातायात को नियंत्रित करने के लिए वाणिज्यिक बंदरगाहों और समुद्र के पानी से नगर को बचाने के लिए बांध जैसी संरचनाओं का निर्माण किया गया था।

वहीं दूसरी तरह 20वीं सदी के मध्य से समुद्रों पर हो रहे इन विकास कार्यों की रफ़्तार में वृद्धि हुई है। जिसके कुछ अच्छे और कुछ बुरे नतीजे सामने आए हैं। उदाहरण के लिए जो पर्यटन और मछली पकड़ने को बढ़ावा देने के लिए कृत्रिम रीफ्स का निर्माण किया है वो संवेदनशील प्राकृतिक आवासों जैसे कि सीग्रास, मडफ्लैट्स और साल्टमार्स पर भी असर डाल रही हैं। इससे पानी की गुणवत्ता में भी गिरावट आ रही है।

2028 तक इसमें 70 फीसदी तक की वृद्धि होने का लगाया है अनुमान

ऐना के अनुसार सबसे ज्यादा समुद्री विकास, तटीय क्षेत्रों में हो रहा है जोकि महासागर का सबसे अधिक जैव विविधता वाला हिस्सा होता है। यह जैविक रूप से महासागरों का सबसे उत्पादक हिस्सा होता है। ऐना के अनुसार जिस तेजी से यह विकास हो रहा है, उसके चलते 2028 तक इसमें 50 से 70 फीसदी की वृद्धि होने का अनुमान है। जिसके लिए मुख्य रूप से बिजली और इंटरनेट के लिए बिछाई जा रही केबल और सुरंगे, एक्वाकल्चर के लिए तैयार किया जा रहा बुनियादी ढांचा आदि जिम्मेदार हैं।

साथ ही दुनिया भर में जिस तरह से जलवायु परिवर्तन का असर पड़ रहा है उसके कारण समुद्री जल स्तर में वृद्धि हो रही है और तटीय अपरदन भी हो रहा है। जिससे बचाव के लिए तेजी से विकास कार्य किया जा रहा है। इसके साथ ही ट्रांसपोर्ट, ऊर्जा और टूरिज्म के लिए भी समुद्र में संरचनाओं का विकास किया जा रहा है।

हालांकि उनके अनुसार यह जो आंकड़ा है वो उससे कहीं ज्यादा हो सकता है, क्योंकि दुनिया के कई देशों में कितना विकास कार्य किया जा रहा है उसके बारे में सही जानकारी उपलब्ध नहीं है और उन देशों में नियमों की कमी उसे और छुपा रही है। ऐसे में शोधकर्ताओं का मानना है कि इससे निपटने के लिए बेहतर प्रबंधन की जरुरत है। जिससे समुद्रों पर इस विकास के पड़ रहे नकारात्मक प्रभावों को सीमित किया जा सके।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008